चिद्गगनचन्द्रिका

श्रीमहाकवि कालिदासविरचिता

श्रीधनदानन्दनाथदीक्षानामशालिना, कर्त्रा अग्निहोत्रशास्त्रिशर्मणा विरचितया, दिव्यचकोरिकाख्यव्याख्यया समलंकृता।। (प्रथमविमर्शः)।

श्रीशक्तिपुत्र गणेश की स्तुति और उपासना से मायीय मल के निरास हेतु प्रार्थना। यह मङ्गलश्लोक भी है।

श्रीशक्तिपुत्रस्य गणेशस्य स्तुतिर्नादोपासकानां मायीयमलनिरासप्रार्थना।

—''गणेशस्मरणम्''।

अथ मंङ्गलश्लोकापि—

क्षीरोदं पौर्णमासीशशधर इव यः प्रस्फुरन्निस्तरंगं
चिद्व्योमस्फारनादं रुचिविसरलसद्बिन्दुवक्त्रोर्मिमालम्।
आद्यस्पन्दस्वरूपः प्रथयति सकृदोंकारशुण्डः क्रियादृक्
दन्त्यास्योऽयं हठाद्वः शमयतु दुरितं शक्तिजन्मा गणेशः।।1।।

वह जो— पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान, चमकते हुए, शांत निस्तरंङ्ग क्षीरोद में, अचानक तरंङ्गों का ज्वारभाटे जैसा स्फुरण पैदा करता है, जो चिद्व्योम में आद्य स्पन्द रूपी नाद पैदा करता है, जिससे चमकती हुई, फैलती हुई, उछल—कूद करती हुई बूंदों के समूह की माला सदृश वाक् की तरङ्ग पैदा होती हैं, एकबार पैदा होती हैं, प्रस्फुटित होती हैं, — वह गणेश— जो पुर्यष्टक के अवयवों (पुर्यष्टक की पञ्चदश कलाओं के स्वामी) सदृश पञ्चदश इन्द्रियों का स्फुरण होता है, लोक—व्यवहार होता है) के स्वामी हैं, जो ऊँकारशुण्ड, क्रियादृक् और दन्त्यास्य हैं, जो शक्तिजन्मित हैं, जो शक्तिजन्मा हैं, वह गणेश हठात् तुम्हारे (पाप, भ्रम और) मायीय मल को दूर करें।।1।।

—इति मंङ्गलश्लोकापि—

ऊँ शुभम् अस्तु

अथ मङ्गलश्लोक व्याख्या –

क्षीरोद इत्यादि

क्षीरोदमित्यादि।। यहाँ यद्यपि ''शुभदो मो भूमिमियः'' अथवा 'मो भूमिः श्रियमातनोति'' इति उक्त छंदोगणलक्षण के अनुसार भूदेवता भगण का देवता है, इस लक्षण के अनुसार, भूदेवता[1] के मङ्गल हेतु, गुण की शुद्धि केलिए, यौगिक (कसोटी पर परखे हुए), वर्ण की शुद्धि केलिए, कूट वर्ण क्ष (क्षकार)[2] के प्रयोग में निहितार्थ, क्षकार रूपी यौगिक वर्ण शुद्धि से, उससे (कहे जाने केलिए) अभिप्रेत अर्थ को द्योतित किया गया है। तथापि क् से म् स्पर्श वर्णों में (जड़– जाग्रद दशा और प्रकृति कहे जाने वाले तत्त्वों का प्रत्याहार सिद्ध है) तथापि क से म स्पर्श वर्णों में जड़जाग्रद दशा में प्रकृति की बाह्य सृष्टि कही जाने वाली दशा में (प्रत्याहार सिद्ध है), क से म तक प्रत्याहार सिद्ध है, यही जीवगत स्थूल सृष्टि है और काम, पुरुषार्थ आदि से कही जाती है, पाशुक (पशु) से सम्बन्धित है, उनको हटाकर, छोड़कर, त्यागकर, श, ष, स, ह ऊष्म वर्णों से द्योतित चित् रूप और प्रकृति के तादात्म्य से उत्पन्न शुद्ध विद्या, सदाशिव, ईश्वर, शक्ति के मिथुन रूपी परशिव की स्थिति तक, के अन्तर्गत हृदय तत्त्व है और पञ्चम कहे जाने वाले (शक्ति से जन्म लेने वाले), शक्ति से जन्म लिए हुए, गणेश रूपी विशेषण से ज्ञात होने वाले, (शक्ति के विसर्ग के विलास रूपी), विसर्ग के समुद्र रूपी विलास और निरंतर चिन्तन से ईषित किये हुए आद्य स्पन्द, प्रथम स्पन्द रूपी गणेश तत्त्व जो शिव के कुमार हैं, और कूटस्थ वर्ण क्ष (क्षकार) से जिसके अर्थ का बोध होता है, जिसका (मन से ध्यान किया जाता है, जो क (ककार), जो) जाग्रद दशा का बोध कराने वाले क (ककार) रूपी आदि स्पर्श अक्षर से जिसका मन में ध्यान किया जाता है, और जो तुर्यदशा का बोध कराने

---

1 मगण (गणनाम्), रुपम् (SSS), देवता (मही), फलम् (लक्ष्मी, शुभ), (वृत्त रत्नाकर, पृ. 6)

2 भूमिः–ग, क्ष, पृ. 31, वर्णवीजकोषः, भूबीजम् = ग्लौं = गणेशबीज श्रीतन्त्रभिधाने

वाले उष्माण, उष्म वर्णों में से, जो द्वितीय वर्ण (उष्म वर्ण– श, ष, स, ह) 'ष' के परामर्श से जाना जाता है, जो प्रत्याहार (क से ह) के प्रत्याहार के अन्त में अर्न्तमुख हृदय रूपी व्योम से द्योतित है, और क (ककार) और ष (षकार) से बने प्रातिपदिक 'कष' से कहे हुए अर्थ की प्रतीति से, अर्थ को प्रतीत (करते हुए) से (वहाँ) ''जागृति'' रूप से कहे जाने वाले उभय पिण्डी भूत क्ष (क्षकार) रूपी गणेश, जो प्रवृत्ति और निवृत्ति के सामरस्य से उत्पन्न ''उभय दशा'' से सूचित, (जाने जाने वाले), से द्योतित हैं पुर्यष्टक और, जो पुर्यष्टक के (के अवयव पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच तन्मात्रा) स्वामी ''गणेश'' हैं, उस तत्त्व को यहाँ सूचित किया गया है, कहा गया है। मातृकाचक्रविवेक के तुर्यखण्ड में कहा गया है– ''मात्मा पशुः .... परत एव भवेत्प्रकृत्याः।।22।। अर्थात्– जिस प्रकार मकारात्मक पशु भेद–संसार की प्रवर्तक प्रकृति द्वारा बद्ध है उसी प्रकार अभेद–संसार की प्रवर्तक प्रकृति के द्वारा क्षकार की भी वद्धता की आशङ्का हो सकती है, अतः बन्धन युक्त क्ष–कार एवं म–कार के सामरस्य–रूप देवता की उपासना युक्ति युक्त नहीं है। इस शङ्का का निवारण इस सूत्र में किया गया है। सूत्र की व्याख्या–''प्रकृति द्वारा निगीर्ण (ग्रस्त) मकारात्मक पशु प्रकृति ही है तथैव हकारात्मक चित् भी निवृत्ति–रूप प्रकृति है। क्योंकि दोनों का नियत आनषङ्गिक सम्बन्ध है। उपर्युक्त प्रतिपादन के अनुसार प्रवृत्ति एवं निवृत्ति रूप द्विधा प्रकृति का विश्रान्ति–स्थान क्षकार भी प्रवृत्ति एवं निवृत्ति भेद से दो प्रकार का सा प्रतीत होता है। शुद्ध अन्तर्मुख होने के कारण क्षकार बाह्य एवं अभ्यान्तर दोनों संसारों की कला से स्पृष्टि है, अतः प्रकृति से अनावृत होते हुए भी स्वयं प्रकृति का आवरक है अतः क्षकार, प्रकृति से परे परशम्भु है न कि प्रकृति से आवृत जीव। अतः क्षकार नित्युक्त है। प्रकृति का वाह्य रूप ह–कार एवं अत्यन्त बाह्य–रूप म–कार ही प्रकृति के परतन्त्र होने के कारण प्रकृति रूप है, किन्तु क्षकार (परशम्भु) प्रकृति के परतन्त्र नहीं है। अतः उनका स्वरूप उपास्य है।'' एवम् तर्यखण्ड में ही कहा गया है, ''यद्वा शिवः क्ष इह ... शम्भो (स्तस्य) सदेश्य

गुणगन्धितयार्च्यभावात्'' ।।23।। अर्थात्–यहाँ कुछ विद्वानों का मत है कि म–कार के प्रतियोगी होने के कारण क्ष–कार में विकल्प का लेश अनिवार्य है। अतः शुद्ध निर्विकल्प चित् सुषुप्ति–पद ही परम तत्त्व है; जिस कारण से इसको उपास्य प्रतिपादित किया गया है। इसी आक्षेप को स्पष्ट करते हुए इस श्लोक की व्याख्या है कि, ''जीव के प्रतिपादक म–कार एवं क्ष–कार में अन्योन्य व्यापय–व्यापक भाव का संसर्ग है, अतः क्ष–कार अर्थात् शिव में विकल्प की गन्ध नित्य है न कि परमशिव में। चिदात्मा चिन्मय सौषुप्त पद ही परम शिव तत्त्व है। अतः परम–शिव उपास्य है। इसके विपरीत टीकाकार का मत है कि चित् सुषुप्ति में भी विकल्प का अत्यन्त उच्छेद दुष्प्रतिपाद है। यदि विकल्प के अत्यन्त उच्छेद की सिद्धि की जाये, तब परम–तत्त्व में जडत्व का प्रसङ्ग उत्पन्न हो जाता है। जड़–तत्त्व की उपासना का विधान नहीं है। अतः विकल्प–पद अथवा गन्ध–पद (अर्थात् विकल्प के संसर्ग से युक्त पद) में ही उपासना का औचित्य है। क्ष–कार की स्थिति चक्र के मध्य में विभावित है, अतः सम्प्रदाय के अनुसार क्ष–कार ही चक्र का अधिष्ठाता है; जिसके कारण इसका उपास्यत्व और अधिक स्पष्ट हो जाता है। क्ष–कार शम्भू का अवबोधक है, अतः सम्प्रदाय के अनुसार शम्भू की स्थिति भी क्ष–कार के समान ही चक्र के मध्य में प्रतिष्ठित है। एवं इसी से शम्भू की चक्राधीशता का बोध होता है तथा इसी (गुन्ध) कारण गुण–गन्धता के हेतु से शम्भू का ही उपास्यत्व सिद्ध है। अर्थात् परम–तत्त्व शम्भू–गुण के आधार से ही उपासनीय है न कि निर्गुणता के कारण। इस से यह भी सिद्ध होता है कि क्षकारात्मक शम्भू की स्थिति सम्प्रदाय के अनुसार चक्र के मध्य में ही है।''

जैसे शांत निस्तरङ्ग क्षीरोद (=क्षीरसमुद्र) में, पौर्णमासी का चन्द्रमा, अचानक लहरों का ज्वारभाटा सा उठा देता है, वैसे (उसी तरह से) गणेश भी शांत निस्तरङ्ग चिद् व्योम में एक बार प्रकट होते हैं। स्वात्म में अनुभव की एकवार की अनुभूति ही एक बार प्रकट होने को दर्शाती है, ऐसा यहाँ भाव है। यहाँ पुर्यष्टक के स्वामी गणेश का

पौर्णमासी के चन्द्रमा सदृश साम्य वर्णन है, (जैसे) चन्द्रमा की अविनाशी (सादा) कला पर्यंत की जैसे वृद्धि और क्षय होती है, उसकी भांति गणेश भी पुर्यष्टक की अवयव पञ्चदश कलाओं की (पाँच कर्मेन्दियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच तन्मात्र) वृद्धि और क्षय करते हैं, इससे चन्द्रमा के द्वारा नाम कला पर्यंत कलाओं की वृद्धि और क्षय ही सूचित (की जा रही) है।

अथवा उपासकों के मायीय (माया से उत्पन्न) भेदों के प्रकटन को एक बार के प्रत्यन से दूर करना, यही 'एक बार' इस पद का अन्वय है। स्फार, नाद, रूचि ओर विसरः (=विस्तार) आदि विशेषणों से 'देहली दीपन्याय' के अनुसार क्षीरोद ही की अपेक्षा योजित होती है। (देहली दीपन्याय–इस दृष्टान्त का प्रयोग उस परिस्थिति में किया जाता है कि जहाँ किसी वस्तु के द्वारा अनेक प्रयोजन सिद्ध होते हों, जैसे देहली पर रखा हुआ दीपक जो भीतर बाहर दोनों ओर प्रकाश फैलाता है, कहीं पर जीभ को इसके उदाहरणार्थ भी कहा गया है, जीभ दोनों ओर से इस्तेमाल होती है, भीतर से बाहर बोलने केलिए और बाहिर से भीतर खाने केलिए। शरीर के अन्य अंग तो सिर्फ एक काम करते हैं, किन्तु जीभ दो काम करती है)। क्षीरोदञिति। क्षकार, मेरु, वर्णषडध्व (वर्णाध्वा) रूपी सृष्टि, (अध्वा की संख्या छः होती है, अतः षडध्व कहते हैं), वर्ण अध्वा, वर्णाध्वा में वर्णों की अनवच्छिन्न रूप से सहज परामर्शरुपता स्वीकार की गई है, अकार से लेकर क्षकार तक पचास वर्णों को ही मातृका की संज्ञा भी दी जाती है। वर्णादिपूर्ववर्ती अध्वा अपने उत्तरवर्ती अध्वाओं में व्यापकरूप से स्थित हैं तथा भुवनादि उत्तरवर्ती अध्वा अपने पूर्ववर्त्ती अध्वाओं में व्याप्यरूप में स्थित हैं। इस तरह प्रत्येक अध्वा में गर्भरूप से अन्य पाँच अध्वाओं की सत्ता है, 'स्वच्छन्द–तंत्र' के दीक्षा–विधि–प्रकरण में एक अध्वा की ''शुद्धि'' से समस्त अध्वाओं की शुद्धि बताई गयी हैं)। इत्यादि रूपों से क्षीर जो दहराकाश (=हृदय रूपी कमल में स्थित सूक्ष्म आकाश, जिसमें ब्रह्म स्थित है) है, का ही कथन होता है। अथवा जो इन्द्रियों की वृत्ति का क्षर (=क्षय) करे वह क्षकार है। वहाँ उदय होने वाला, इस अर्थ में क्षीरोद चिद् रूपी व्योम का विशेषण है। वहाँ (उदय होने वाली तरङ्ग, या तरङ्गों का क्षीर समुद्र (दुग्ध सागर)) चिद्वयोम का विशेषण है। वहाँ क्षार

के समुद्र (क्षारोद) का उदय होता है, जिससे वह क्षीरोद (क्षीरः+उदः) कहलाता है, यही रहस्य है। यही क्षीरोद का रहस्य है। क्षीरोदधि =क्षीरः+उदधिः की भी विशेषता दर्शाता है। उभय धातु से हृदय के उद्योग का बोध होता है, अर्थात् हृदय में तरङ्गों का उदित होना हृदय द्वारा की गई चेष्टा, अथवा 'हृदय में उत्पन्न चेष्टा रूपी उ़द्योग' यही इस पद का अर्थ है। यह आद्य स्पन्द स्वरूप है अर्थात् सृष्टि का प्रथम स्पन्द है, यही नाद है। सृष्टिक्रम (में) अनुत्तर रूपी अकार प्रथमस्वर है, और वाक् के अर्थ में अचल स्वरूप है। संहार क्रम में (क्षकाररूप पद प्रथम तथा क्रमशः प्रथम पद–अकार है) वहाँ (आद्य पद) क्षकार से आद्य पद का प्रत्याहार स्पन्द स्वरूप है, जो अक्ष (अकार, क्षकार) का स्पन्द है, जिससे संहार क्रम का आरम्भ होता है, वही गणेश का विशेषण है। तब, उस समय चमकती हुई, प्रसारित होती हुई, उछल–कूद करती हुई, बूंदों के समूह की (जलकणों की) माला रूपी वाक्, यह विग्रह है। वाङ् माधुर्य (अर्थात् वाणी का माधुर्य, वाग्मिता) के माधुर्य रस के अनुसन्धान से, रूचि, विसर, लसन्त, बिन्दु का शब्दार्थ अलङ्कार आदि के रस के अनुसन्धान (के अनुसार) से, (चिद्व्योम का) प्रकाशमान, तालुरस से कही जाने वाली ब्रह्म बिंदु, शब्दोच्चारण (=वाक् की) का मेघ–समूह (=जल कणों का समूह, जैसा कि बरसाती समय में होता है) की (अर्थात् मेघ–समूह की वदन, वाक्, बोलने की माला सी), वाक् परम्परा, वाक् व्यापार परम्परा से वाक्परम्परा से, विमर्शमय दहराकाश, चिद्व्योम का ही विग्रह है। अथवा अन्तः स्फार नाद रूपी (से), रूप से प्रस्फुटित बाह्य वैखरी वाणी ही (है जो) चमकती हुई, प्रसारित (=फैलती हुई, विस्तारित होती हुई) होती हुई, उछल–कूद करती हुई, बूंदों के समूह की माला जैसी है, आगे कथनीय आणव आदि मल त्रय लक्ष्ण के किञ्चिन शेषमात्र भी नहीं रहते, विकल्प से संबद्धित विग्रह है, और भी विकल्प से अर्थ भेद से अन्वय भेद है, अर्थात् विकल्प के फलस्वरूप आने वाले आणव आदि मल त्रयों के किञ्चित भी, किञ्चित शेष, अंशमात्र भी आरोपित नहीं होते अर्थात् नष्ट हो जाते हैं, और (विकल्प से) (वा) विकल्प (यह भी है) से उपरोक्त गुणों की वैखरी रूपी माला, का अर्थ के भेद से भी अन्वय भेद है। ऊँकार शुण्डः, क्रियादृक, दन्त्य, और शक्तिजन्मेति, यह चार गणेश के विशेषण हैं।

वहाँ ओंकार वाच्य शब्द से, ओंकार से (अभिव्यक्त, ओंकार से अभिधा द्वारा ज्ञात, अभिव्यक्त, अभिधा=शाब्दिक शक्ति या शब्दार्थ, संकेतन) अभिव्यक्त शाब्दिक अर्थ–पुरुषतत्त्व की शुण्ड (=करः), ओंकारशुण्ड है। तथा श्रुति कहती है–"पण्डित अर्थात् शिवानुभवज्ञानी भक्त, अपने निर्मल चित्त को अरणी (काष्ठनिर्मित यज्ञसाधन को) नीचे की लकड़ी बनाकर, और प्रणवम् को ऊपर का अरणीकाष्ठ बनाकर, प्रतिदिन यथावसर तेल की धार अथवा घण्ट के निनाद के समान अविच्छिन्न ओंकार का उच्चारण तथा चिन्तन की बारंबार आवृति के कारण, अभ्यास के कारण, अपने पाप जलाता है।" अतएव क्रियादृक, दन्त्यास्य और शक्तिजन्मेति यह तीन विशेषण ज्ञान, इच्छा, क्रियामय रूपी कार्य ब्रह्म के रूप को सूचित करते हैं। वहाँ क्रियादृग का अर्थ हुआ बहिर्मुख क्रियामात्र का विमर्श और दन्तयास्य का अर्थ हुआ जिसका फल, किसी भी पदार्थ के उपभोग की इच्छा के द्योतक यौवन अवस्था संपन्न 'मुख' का विशेषण, और शक्तिजन्मेति=शक्ति से जन्म लेने वाले का अर्थ हुआ क्रियामय शरीर (द्योतक) रूपी जन्मभूमि से द्योतक, शक्ति से जन्म लेने वाला – ब्रह्मवैवर्त पुराण में, त्रिमूर्तिमय रूप को सूचित करते हुए कहा है कि – कार्य विष्णु है, क्रिया ब्रह्म है और कारण महेश्वर है। यहाँ पूर्ण उपमा अलङ्कार है। और यहाँ स्रग्धरा वृत्त (छंद) है। जिसका लक्षण है–

अथ प्रकृतिः–

म्रभ्नैर्यानां क्रमेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धराकीर्तितेयम्।।

मगण–रगण–भगण–नगण–त्रियगणैः स्रग्धरा नाम वृत्तं भवति। त्रिवारं मुनिषु यतियुता–सप्तसु, सप्तसु, सप्तसु च यतिमतीत्यर्थः। भावार्थ–जिस छन्द में मगण, रगण, भगण, नगण तथा अन्त में तीन यगण हों उसे स्रग्धरा छन्द कहते हैं। इसमें मुनि अर्थात् सात, सात अक्षरों पर तीन बार विराम होता है।

इति।।1।।

2. त्रिविधजीवशक्तिकारणतुरीयपरशिवस्यः स्तुतिः कार्मणमलनिरासश्च।

त्रिविध जीवशक्ति कारणं तुरीय रूप परशिव की कार्मणमल के निरास हेतु स्तुति।

> **स्थूलं सूक्ष्मं परं च त्रिविधमिह जगद्यत्प्रथावेशसिद्धया**
> **युक्तं सत्ता यदीया स्फुरति च परतः स्वप्रथैकस्वभावा।**
> **भामूर्तिं यं विमर्शक्रियमनुपतिता लक्ष्यते लोकवृत्तिः**
> **सन्मार्गालोकनाय व्यपनयतु स वः तामसीं वृत्तिमीशः।।2।।**

व्यावहारिक, प्रातिभासिक और पारमार्थिक त्रयी सत्ता का आश्रय (है) स्थूल, सूक्ष्म और पर नामक रूप से जाना जाता है। यह नाद का अर्थ है, सदृश है, और स्थूल वैखरी रूप है, सूक्ष्म मध्यमा रूप है और पर पश्यन्ती वासना रूपी है। यह जगत त्रिविध रूप है। गच्छतीति, जगदिति इत्यादि शब्दों की व्युत्पत्ति के अनुसार ही सिंह आदि गणपाठ में सिद्ध (=नित्य) वर्णों के व्यत्यास से क्रम विपर्य्याय से और वर्णों के आगम से (=जुड़ने से) जीव शक्ति रूप त्रिविध परशिव के अर्थ हैं। आवेश के प्रथन् से, फैलने से, प्रकाशित होने से सिद्ध, पर पर्याय, पर के अतिविस्तृत, विस्तीर्ण रूपी (पर के) पर्याय रूप में व्याप्ति से सिद्ध, पर (युक्त) सदैव स्फुरण करता है। वह (पर) देव, नाममात्र के भेद से स्वयं ही प्रकाशित होने वाले (फैलने वाले (स्वभाव)) मुख्य व्याप्ति स्वभाव वाला है। यह परशिवात्म (वस्तु, परशिव आत्मा रूपी वस्तु सम्बन्धी), आत्म वस्तु सम्बन्धी रूपी सत्ता के परे भेद रूप से वर्तमान जगत आकाश सहित सफुरित होता है। यह स्वयं सिद्ध सिद्धिमत रूपी अन्योन्य (आश्रय अलङ्कार) से हमारे भेदवादियों की सूचना मिलती है। वहाँ भेदसृष्टि प्रातिभासिक होने (वाला) शब्द शरीर मात्र रूपी है, इस रूप में प्रायः इसकी व्याख्या होती है। तथा विमर्श मात्र रूपी क्रिया मूर्ति रूप से प्रकाश मात्र विग्रह कहलाती है, प्रकाशमात्र ही उसका विग्रह है। और श्रुतिः कहती है–''वहाँ (उस आत्मलोक में) सूर्य प्रकाशित नहीं होता, चन्द्रमा और तारे भी नहीं चमकते और न यह विद्युत् ही चमचमाती है; फिर इस अग्नि की तो बात ही क्या है? उसके प्रकाशमान होते हुए

ही सबकुछ प्रकाशित होता है और उसके प्रकाश से ही यह सब कुछ भासता है– ''यह सर्वप्रकाशक का अप्रकाश्यत्व है।'' ऐसे ही यहाँ इसका अनुसरण किया जाता है। लोकवृत्तिः लोक की वर्तन भी है।

इसका अर्थ जीविका भी है। इसी को लक्ष्य किया जाता है। साधक इसी को लक्ष्य करते हैं यही सन्मार्ग को दिखाने वाला – अर्थात् सन्मार्ग रूपी परमार्थसत्ता के साक्षात्कार (का मार्ग) कराने वाला मार्ग है। खोजे जाने योग्य ही मार्ग कहा जाता है, मृग्यते वस्त्वनेन मार्ग इति वा, और विकार का अर्थ क्रम रूप से उस मार्ग का साक्षात्कार ही है। उसके दर्शन का साक्षात्कार अर्थ है। तामसी वृत्ति शुभ अशुभ अनुष्ठान रूपी कार्मणमल ही है, और स्वरूप का आगमन, स्वरूप को प्राप्त करना कर्म को साधने हेतु भ्रांति को दूर करना (=व्यपनयतु) ही है।

मनुष्यों की अद्वैत वासना ईश्वर, अनुग्रह देव हैं।।, (अज्ञान के नाश रूपी) ईश्वर के अनुग्रह के फल स्वयप अज्ञान का नाश ही अनुपाय (स्थित) है, (इत्यादि), ऐसा उक्त है यह भाव है। भूताकाश पक्ष में – सत्ता और नक्षत्र का मार्ग ही दर्शन योग्य है, दर्शन केलिए है। तामसी वृत्ति रात्रिगत अन्धतम व्यापार रूपी वैसी ही है, जैसे दिक्क्, काल, आकाशमय (शरीर) रूपी शरीर को मेघ आवरण कर लेते हैं, वैसे ही तामसी वृत्ति रात्रिगत अन्धतम व्यापार जैसी है जो ईश का नाश करती है। यहाँ (एतेन) तार्किकों के मत से तम (=अन्धकार) द्रव्य रूप है, वेदान्तियों के मत से मिथ्या अज्ञान भी द्रव्य है, और वस्तुतः इसका निरास हो जाता है, ऐसा देखा गया है, पाया गया है। (वेदितव्यम्)। तेज का आवरण आवृत, ज्ञान रूप में तम का आवरण मात्र है, जो मिथ्या ज्ञान = अज्ञान, के रूप में व्यवहार में आता है (जैसे नक्षत्रों के स्फुरण से आकाश में प्रकाश होता है, वैसे ही) जैसे अन्धकारमय रात्रि में प्रकाश होता है, वैसे ही नक्षत्रों के स्फुरण की अनुभूति से आकाश में प्रकाश होता है। यह भाव है। और श्लेष विधि से शिवतत्त्व के परामर्श से, (पाठभेद से) साधकों के विद्या अविद्या स्वरूप आनन्द साम्राज्य (सम्पूर्ण शाम्भव विसर्ग रूप आणव मत के अपकरण हेतु) में संगृहीत, प्रार्थना रूप में यह अपनी कृति (चिद्गगनचन्द्रिका) ही हेतु है, ऐसा यहां दर्शाया गया है।।2।।

3. कृतितत्कर्त्रोरभेदसूचनाय तदुभयनामोद्धारः, आणवमलनिरासश्च।

चिद्गगनचन्द्रिका कृति से आणव मल का निरास हेतु।

इह कालिदासचन्द्रप्रसूतिरानन्दिनी स्तुतिव्या (र्व्या) जात्।

चिद्गगनचन्द्रिकाब्धेः शमयतु संसारदावदवधुं वः (नः)।।3।।

इह इत्यादि, यहाँ आदि। यहाँ इच्छित प्रबन्ध कृति की कालिदास नाम के चन्द्रमा से प्रसूति, उत्पत्ति बताई गई है, और उसकी स्तुति उक्त है, कही गई है। आनन्दपूर्ण आनन्द देने वाली चिद्गगनचन्द्रिका की स्तुति है, जो छन्दः, पाद आदि नियमबद्ध बाह्य और आभ्यंतर व्यापार रूपा कृति है। अब्धेर्व्याजात् का अर्थ है– संसार रूपी सागर की भ्रान्ति, जो छल है, छलावा है। वः नः पाठकों का, और तुम लोगों का (संसार की वनाग्नि, संसार रूपी वन की अग्नि के सागर का सुलगाना अर्थात् संसार के दुखों के सन्ताप की अग्नि, दुखों की अग्नि, का सुलगना) संसार की वनाग्नि का सुलगना अर्थात् संसार रूपी सागर के दुखों की अग्नि है, अल्प मात्रा में, थोड़ा जाना गया आणवमल प्रयुक्त ताप त्रयात्मकम् यह अर्थ है, (यह भ्रम, अहमात्मक मिथ्याज्ञान, अल्पज्ञान) यह अल्पज्ञान–अहमात्मक मिथ्याज्ञान रूपी आणवमल है, जो कि तापत्रय तीन प्रकार के संताप जो मनुष्य को इस संसार में सहन करने पड़ते हैं अर्थात् आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक, में प्रयुक्त होता है, ऐसा अर्थ है। स्फुरन्तम् इति, शेष है। संसार रूपी सागर को यह शान्त करता है, क्या वह आनन्द रूपी सागर से व्याप्त होना है, यह शाङ्करमार्ग रूपी स्वरूपज्ञान का दान रूपी आनन्द है, आनन्द लिये हुए है, ऐसा आश्य है। (अब्धेर्व्याजात=संसार सागर रूपी छल) व्याज स्तुति पाठ से अर्थ–स्तुति मिष (स्तुति छल) = स्तुति का झूठा आभास, पर वास्तव में स्तुति है) आदि अर्थ (–ऐसा अर्थ है), ही है।

स्तुतिरित्यपह्नवमात्रं विमृश्यमान यह स्तुति, क्या यह अनुत्तर पर स्वरूप रूपी (है) चिद्गगन स्थित चन्द्रिका से व्याप्त है, ऐसा भाव है। अतएव यह आनन्ददायिनी,

आनन्दमयी सत्य रूपी सागर, संसार रूपी सागर के दुखों की अग्नि, तुम्हारी और हमारी, तुम्हारे और हमारे किञ्चिदज्ञ=अल्प ज्ञानशून्य आणवमल रूपी वाडवानल अग्नि का ताप, वाडवानलतापं=समुद्र के अंदर की अग्नि के ताप को शान्त करना यह अन्वय है। (जैसे गगनचन्द्रिका रूपी संसार के अंदर की अग्नि के सन्ताप, (के दुख) का निराकरण) जैसे गगन चन्द्रिका रूपी चन्द्रमा, बाडव अग्नि के संताप को हटाता है, उसी प्रकार यह चिद्गगनचन्द्रिका भी पद पदार्थ के समन्वय रूपी संसार, के समन्वय से कहे जाने वाले संसार के दुखों की अग्नि को शांत करती है, यह भाव है। कृति के पक्ष में काली संबुद्धि है। अर्थात् कृति में काली का पूर्ण ज्ञान है, सम्यक् बोध है। हे कालि! आपका दास, चन्द्र से प्रसूत, उत्पन्न तुम्हारा अविनाशि सादा कहे जाने वाले चन्द्रकला स्वरूप पुरुष (अर्थात् शिव) रूपी गगन में चारों ओर दिखने वाले व्यावहारिक चन्द्रमा का अवशेष ही है। वहाँ से उत्पन्न नन्दिनी जैसी चन्द्रिका जैसे आपकी दासी है वैसे ही चिद्गगन चन्द्रिका नन्दिनी है, शाङ्करमार्ग को प्रदान करने वाली है, हमारे (और अन्य भूतों आदि, मनुष्यों आदि और) दासभूतों के और साधकों के आणव मल रूपी संसार के दुखों की अग्नि को शान्त करने वाली है, ऐसा अन्वय है।

यदुक्तं ''श्रीमत्स्तोत्रावल्याम्''–

तब महार्थमञ्जरी की परिमल व्याख्या में कहा हुआ है –

''दुःखान्यपि सुखायन्ते विषमप्यमृतायते।

मोक्षायते च सँसारो यत्र मार्गः स शाङ्करः।।इति।। पृ. 163, ।।65।।

अथवा, यहाँ यह वेदशास्त्र आदि विद्याओं की विशद व्याख्या से चिद्गगनचन्द्रिका समुद्र में (समुद्रतुल्य) चिद्गगन चन्द्रिका नामक समुद्रतुल्य काव्यरचना है। इस काव्यरचना में सृष्टि आदि भास पर्यन्त पञ्च कृत्य हैं और उनसे अभिन्न देवतरू पञ्चक (मन्दार, पारिजाZत, सन्तान, कल्पवृक्ष और हरिचन्दन) हैं और पाँच रत्नों का संग्रह (प्रमुख है), प्रमुख रूप से किया गया है, और समुद्र से

साम्यता है ऐसा भाव है। कालिदास की चन्द्रमा से उत्पत्ति है, कालिदास नामक कवि का जन्मकारण चन्द्रमा है, यह श्लिष्ट रुपक है अर्थात् श्लेष से युक्त, दो अर्थों की संभावना से युक्त है (यहाँ दो अर्थ हैं– कालिदास स्वयं और उनकी कृति चिद्गगनचन्द्रिका दोनों ही चन्द्रमा से उत्पन्न हैं)।

गगन चन्द्रिका आनन्दिनी (आनन्दपूर्ण) है, सतीति पद की वृत्ति, स्तुति पद की वृत्ति स्तुतिव्याज से स्तुति व्यापार में छल को दर्शाती है, अर्थात् ऐसी स्तुति जो किसी व्याज (छल) या किसी वहाने से की जाय और ऊपर से देखने में स्तुति न जान पड़े फिर भी स्तुति की गयी हो जैसे यहाँ कालिदास की कृति की स्तुति ऊपर से देखने में स्तुति, न जान पड़े फिर भी यहाँ उनकी कृति चिदगगनचन्द्रिका की ही स्तुति की गई है, जो कि संसार रूपी सागर का भ्रांति रूप छल है।

तुम्हारी श्रोताओं की, हमारी अैर पाठकों की संसार रूपी वन की अग्नि अर्थात् संसार रूपी सागर के दुखों की अग्नि को जो अविद्या रूपी संसार के दुखों की अग्नि के समान है, को शांत करती है, ऐसा अन्वय है। इसी कारण ऐसा पाठकों के जानने योग्य है। इस पक्ष में ऐसा पाठकों के जानने योग्य है। यहाँ पूर्वतर दो श्लोकों में (और समाप्ति पाठ में, ओर इस श्लोक में) और समाप्ति पाठ में इस श्लोक में, वः और न ऐसे पाठभेदों में साधकों का आणवआदि तीन मलों का, और (दूसरे की निरन्तरता से) और दूसरे श्लोक की निरन्तरा से और अपने आप नाश को प्राप्त होने की ओर अग्रसर आणवमल मात्र की निरन्तरता से साधकों के आधिकारिक रूप से विज्ञानकल, प्रलयाकल, भेद और स्वयं के सिद्ध के सकल और निष्कल दो भेद हैं, यह आधिकारिक रूप से चतुर्विध अधिकारभेद हैं, यह मान्य है कि साधक के तीन मल हैं, और सिद्ध के केवल एक मल आणवमल है, और इस प्रकार स्वयं महाकाली और महाकाल शिव के मिथुन सामरस्य, में अवतारित सूक्ष्म रूप की झलक, ऐसी सूचना का भाव है, यही इन तीन मङ्गल श्लोकों का रहस्य है।।3।।

और चतुर्विध साधकों की उपासना हेतु ''हन्त्! ... चोद्योगम् (महार्थमंजरी परिमल, पृ. 173, ।।61।।) ऐसा महार्थमंजरीपरिमल में उक्त प्रकरण में साधक के हृदय के उ़द्योग रूपी स्वयं इच्छित ग्रन्थ के सन्दर्भ की स्तुति, और काव्यमीमांसा के प्रथम सूत्र में कहा गया है–

''सरितामिव प्रवाहास्तुच्छाः प्रथमं यथोत्तरं विपुलाः।

ये शास्त्रसमारम्भा भवन्ति लोकस्य ते बन्द्याः।।

(संस्कृत हिंदी व्यख्याद्वयोपेता, पृ. 26, काव्यमीमांसा, द्वितीय अध्याय, काव्यमीमांसा व्याख्याकार श्री पं. मधुसुदनमिश्रः, 1977), शास्त्रनिर्देशः (द्वितीयोऽध्यायः), चौखम्बा संस्कृत सीरीज

अर्थात्– ''जिस प्रकार नदियों के प्रवाह पहले छोटे होते हैं और पीछे स्थानविशेष पर बड़े हो जाते हैं उसी तरह शास्त्र–समारम्भ भी छोटे–बड़े होते हैं और वे संसार के वन्दनीय होते हैं।।'' –ऐसा काव्यमीमांसा में प्रथम, पहले, सूत्र प्रायतयाः छोटे होते हैं और पीछे स्थानविशेष पर बड़े हो जाते हैं, इसी प्रकार पहले कर्म (वर्तन) यथा अधिकार, आधिकारिक होते हैं, और पीछे विमर्श के फलस्वरूप अपनी वाक् त्रिपुटी में तृतीय प्रमेय (जानने योग्य) चिद्गगनचन्द्रिका जो तुरीय रूप चिद्गगन चन्द्रिका सदृश सविमर्श, विमर्श सहित उपासना करने केलिए, श्लेष मर्यादा (= दो या दो से अधिक अर्थ), इस प्रकार चिद्गगन चन्द्रिका की विमर्श सहित उपासना करने के लिए (श्लेष मर्यादा से जिसके दो अर्थ हैं– वाक्त्रिपुटी में प्रमेय रूपी और तुरीय ये दो सदृश) एवं न दिखाई देने वाले अर्थों के दर्शन का अनुबंध ही यहाँ है।।3।।

4. चिद्गगनचन्द्रिकोपास्तिफलोपन्यासमुखेन अनुबन्धचतुष्ट्यम।

अनुबन्धचतुष्टय के द्वारा चिद्गगनचन्द्रिका कृति की उपासना के फल के उपन्यास को कहते हैं।

चि(त्व) ल्लोचनेन सततं शिवमीक्षितुमन्वये च सद्भावज्।
लब्धुंच पूर्णभावं यदि चेतस्समुपाध्व (द्य) मिमाम्।।4।।

चिल्लोचन इत्यादि।। चिद् ही का लोचन नेत्र अर्थात् ज्ञान नेत्र ऐसा अर्थ है। कि उसके साथ निरंतर शिव की ईक्षिता है, शिव का ही (ध्यान) है, दृश्य है। त्वलोचनेन ऐसे पाठ से साधक की (दृष्टि) नेत्र विचारना है इस प्रकार अर्थ है। अविच्छिन्न तैल धारा के प्रवाह की भाँति परोक्ष वृत्ति से साक्षात करने केलिए (कर्तुम्)। (अन्वय है), सद्भाव का अन्वय है पूर्णभाव की उपलब्धि या लब्धता। इस ग्रन्थ के सन्दर्भ में सरल मार्ग आत्मा से अभिन्न, जो परशिव तात्पर्य रूपी पद पदार्थ समन्वय है, उसके उद्धार हेतु पूर्णभाव या पूर्णता की प्राप्ति, ऐसा अर्थ है। यदि कोई पाठक इस ग्रन्थ को ज्ञान इन्द्रियों से जाने, ऐसा शेष है ....। तो (इसलिए) मेरी स्तुति एक ही मार्ग है और उपयुक्त तात्पर्य के निर्णय हेतु विमृश मार्ग, विमर्श का मार्ग है। ऐसी विधि से प्रार्थना है, लोट् लकार है। स्वपक्ष से अपने, निज पक्ष में चिद् के लोचन से अर्थ है ज्ञान नेत्र। त्वलोचनेनेति = तुम्हारे लोचन ऐसे पाठ से युष्मत् = तुम्हारे प्रत्यय के अर्थ में तत्त्वज्ञान ही लोचन=नेत्र (स्मत प्रत्यय) ही ज्ञान का अर्थ है अर्थात् अपने ही रूप, स्वरूप, को जानने की प्रार्थना–यही तृतीयनेत्र है, यही इस प्रकार अर्थ है। निरंतर शिव की ईक्षिता–शिव का दृश्य है, ध्यान है, जो प्रकृति विविक्त आत्म शिव का परोक्ष रूप ही हैः अनु – और अये का अर्थ इच्छित इच्छा रूपी सद्भाव ऐसा विच्छेद है। तुम्हारी युष्मत् प्रत्यय से तुम्हारे नेत्र का अर्थ हुआ ज्ञान – (ज्ञान नेत्र) – जो शिवात्म रूप ज्ञान है और अनु–से अनुसृत्य अर्थात् शिव से ऐक्यभाव, अर्थात्, और पूर्णभाव (=पूर्णता) के भाव को प्राप्त करना। चकार से यहाँ सद्भावपूर्ण भाव रूपी व्यवहार को इकट्ठा, सम्मलित किया गया है।

सद्भाव से यहाँ कालिदास सत्पुरुष की पूर्णता का भाव है और (अन्य सभी लोगों से सम्बन्ध रखने वाला व्यवहार अर्थात् उनका पूर्णता का भाव) अन्य सभी लोगों से सम्बन्धित व्यवहार अर्थात् उनके भी पूर्णभाव को प्राप्त करने का भाव है। यह रहस्योद्घाटन है। तुम सबका उसी के जैसा सद्भाव प्राप्त करना ऐसा अर्थ प्रेरणा (इच्छित इच्छा=सद्भाव) करने का ही है। अर्थात् तुम सब की इच्छित इच्छा रूपी सद्भाव का अर्थ प्रेरणा करना ही है। ज्ञान नेत्र रूपी शिव से साक्षात्कार केलिये उसके उद्धार से पूर्णभाव और सत्य की उपपत्ति और विद्या धन आदि का और पूर्णभाव से सत्पुरुषों का/के सद्भाव (=इच्छित इच्छा) के व्यवहार का, अर्थात् सभी का, (हमारा और तुम्हारा, अपना आवश्यक है) ऐसा भाव है। सभी को प्राप्त होने वाला है। ज्ञान नेत्र के द्वारा शिव साक्षात्कार केलिये तब उसके उद्धार के द्वारा पूर्णभाव की प्राप्ति और सत्य की प्राप्ति और विद्या धन उसी पूर्णभाव की ऐसे यह सत्पुरुष में सद्भाव के व्यवहार की उत्पत्ति भी, अन्य सब को भी आवश्यक रूप से प्राप्त होगी, आदि की प्राप्ति होगी, ऐसा भाव है। या सब को अवश्य प्राप्त होगी, अर्थात् उनमें भी इस पूर्णभाव की उत्पत्ति होगी। वह पूर्णभाव विद्या कर्म आदि को साधने और श्री=सम्पत् के सम्पादन के बोध से दो नामों से ब्राह्मण और उपनिषद आदि के वाक्यों में, ब्राह्मण पद के अर्थ रूप में (इसलिए, इस प्रकार दो नाम हैं)। मुण्डकोपनिषद् इत्यादि में भी कहा गया है–

परीक्ष्य लोकान्कर्मचितान्ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन।

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोतियं ब्रह्मनिष्ठम्।।12।।

अर्थात्– कर्म द्वारा प्राप्त हुए लोकों की – परीक्षा कर ब्राह्मण निर्वेद को प्राप्त हो जाय, (क्योंकि संसार में) अकृत (नित्य पदार्थ) नहीं है, और कृतसे (हमें प्रयोजन क्या है?) अतः उस नित्य वस्तु का साक्षात् ज्ञान प्राप्त करने केलिये तो हाथ में समिधा लेकर श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ गुरु के ही पास जाना चाहिये।।12।। (मुण्डक 1, खण्ड 2, मंत्र 12) – इस मंत्र में ऐहिक और पारलौकिक भोगों की असारता देखनेवाले

पुरुष के लिये संन्यास और गुरुपसदन का विधान है। यहाँ सर्वत्याग के द्वारा ब्राह्मण का ही ब्रह्मविद्या में विशेष रूप से अधिकार है; इसलिये यहाँ 'ब्राह्मण' पद का ग्रहण किया गया है। और, बृहदारण्यक उपनिषद् में भी कहा गया है;

''...तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणां विविदषन्ति''...।।22।। (अध्याय 4, ब्राह्मण 4, मंत्र 12, वृहदारण्यकोपनिषद्)

अर्थात् – उस इस आत्मा को ब्राह्मण वेदानुवचन के द्वारा = वेदों के स्वाध्याय, यज्ञ, दान और निष्काम तप के द्वारा, जानने की इच्छा करते हैं। इसकी टीका (पृ. 1097) में कहा गया है – .... यह बतलाया जाता है– उस इस ऐसे औपनिषद पुरुष को वेदानुवचन अर्थात् नित्यस्वाध्याय रूप मन्त्र और ब्राह्मण भाग के अध्ययन द्वारा जानने की इच्छा करते हैं। कौन? ब्राह्मण, यहाँ ब्राह्मण शब्द का ग्रहण क्षत्रिय और वैश्य को भी उपलक्षित कराने केलिये है; क्योंकि इसमें तीनों ही वर्णों का समान अधिकार है। अथवा व्यावहारिक और प्रातिभासिक सत्ता त्रिकाल से अबाधित बन्धन रहित अहम् (मैं) रूपी चेतन जो सत् है, पारमार्थिक सद्भाव है, जिसे मैं प्राप्त कर रहा हूँ। यहाँ परमात्मा, परम शिव से स्वयं के ऐक्य का भाव जो सद्भाव (=इच्छित इच्छा) है, वही पूर्णभाव कहलाता है। और तुम सब को भी यह पूर्णभाव (=पूर्णता का भाव) यथाअधिकार प्राप्त हो ऐसा आक्षेप, अर्थ यहाँ बोधित है अथवा इस अर्थ का यहाँ बोध है। ऐसा प्रयुक्त अर्थ यहाँ लगाया गया है, समझा गया है, यह यहाँ बोधित है, इसका यहाँ बोध है। यदि सभी जनों का (सद्भाव, मौलिक) प्रारम्भिक सद्भाव और पारमार्थिक सद्भाव भी न हो जो पूर्णभाव के साक्षात्कार का लाभ है। तो इसलिए मेरी कृति चिद्गगनचन्द्रिका भी स्वयं अपने चित्त के विलास रूप में सम्यक् (=सही उपयुक्त) तात्पर्य के निर्णय हेतु विमर्श का मार्ग दिखाने वाली है ऐसा यहाँ कहा गया है – यदि से ऐसा तात्पर्य है। यदि का अर्थ है मेरी कृति चिद्गगनचन्द्रिका का (चेतन, अर्थात् उसके अध्ययन का फल (चेतः का अर्थ है सम्प्रवृत = उद्भूत, प्राप्त, अर्थात् मेरी चिद्गगनचन्द्रिका) का मनन

(=turn or think over in the mind) 'यदि मेरी' – से ऐसा तात्पर्य है। अपने चित्त में मनन का विलास (चेतः = सम्प्रवृत् = जो ज्ञान इन्द्रियों द्वारा जाना जा सके)। (अथवा) 'यदि मेरी' कृति चिद्गगनचन्द्रिका को कोई पाठक ज्ञानेन्द्रियों द्वारा जाने; 'यदि मेरी'– से ऐसा तात्पर्य है। अपने चित्त में विलास, (अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों द्वारा जानना), चिद्गगनचन्द्रिका रूपी स्तुति को ही जो कवि द्वारा निबद्ध की गई है, अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा जानना है। इसलिए तुम्हारे ज्ञान नेत्र के द्वारा शिव का साक्षात्कार करना और उसके साथ पूर्णभाव प्राप्त करना ऐसा भाव है। जिसे ज्ञानेन्द्रियों द्वारा जाना जा सके ऐसा उद्यम यह पाठ है इससे शिव का ही ध्यान है, शिव की ही प्रेक्षणा है और यदि शिव से पूर्णभाव की प्राप्ति का उद्यम है तब मेरी कृति चिद्गगनचन्द्रिका की स्तुति का उद्यम करें अर्थात् मेरी कृति का अध्ययन करें।

चिद्गगनचन्द्रिका कृति की स्तुति विमर्श से अनुकूल चित का सम्पादन होगा ऐसा अर्थ है। अथवा 'अद भक्षणे' अर्थात् – ''खाने योग्य'' ऐसी धातु से मलत्रय को निगलने के अभिप्राय रूप वाली आत्मा और इमां (इमाम्) इस प्रकार स्तुति को उपयुक्त है। विमर्श रूपी ज्ञाननेत्र के द्वारा प्रकृति विविक्त आत्मा के साक्षात्कार में चिद्गगनचन्द्रिका कृति के विमर्श से उत्पन्न हृदय शान्ति के बिना औपनिषद पुरुष स्वरूप के साक्षात्कार के लाभ से (पर के पर्याय रूपी पूर्णभाव की उत्पत्ति सार्वात्म्यभाव की उत्पत्ति अर्थात् परमेश्वर के पर्याय रूपी सार्वात्म्य (=सर्व सर्वात्मन अर्थात् परमेश्वर) से उत्पन्न पर के पर्याय–पूर्णभाव की उत्पत्ति) और सार्वात्म्य अर्थात् परब्रह्म, परमेश्वर की संतति के पर्याय पर रूपी पूर्णभाव (=पूर्णता का भाव, शिव से परमेश्वर से ऐक्यता का भाव ही जो पूर्णता का भाव है) का आविर्भाव फिर बाद में दूर से भी प्राप्त नहीं होता है– ऐसा इस रहस्य का अर्थ है।।4।। ''इति शुभम्''

और, अनुबन्ध चतुष्टय (–विषय, प्रयोजन, सम्बन्ध और अधिकारी) रूपी चार आरम्भिक श्लोकों के माध्यम से मलत्रय (मायायी, कार्मण मल और आणवमल) में अनुबद्ध त्रिविध अधिकार से अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति अर्थात्– चिद्गगनचन्द्रिका कृति

के अध्ययन का सूक्ष्म वर्णन—तैत्तिरीय श्रुति (तैत्तिरीय अरण्यक) में विराटफल प्रपापक में ऐसा कहा गया है— महाविराट् गायत्री का अर्थ पाँच— एक, दो, तीन, चार, और पाँच पाच्छ शक्ति रूप है, ''पृथिवी पाद, अन्तरिक्ष पाद, द्यौ पाद, दिशः पाद, परोरजा पाद ये पाँच पाद हैं। विराज की प्रतिष्ठा हैं।'' पञ्च (पाँच) के अर्थ में क्रम अपर के पर्याय महाकाली के पाँच वाह क्रम रूपी परम स्थूल रूप से स्त्री सहित चार्तु वर्णों के द्वारा परिणत, पाँच पञ्चजन—गन्धर्वादि क्योंकि गंधर्व, पितर, देव, असुर और राक्षस, अथवा निषाद=चण्डाल जिनमें पाँचवा है, वे ब्राह्मणादि वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और निम्न जाति के निषाद अर्थात् शूद्र और स्त्री— इन पाँचों के त्रिवर्ग, चतुर्वर्ग और पञ्च वर्ग रूपी महापुरुष का त्रिविध तीन रूपों वाले क्रम में, (पहले चार पुरुषार्थ और पंचम पुरुषार्थ के सामरस्य रूपी अमुष्मिक (=अकल्याण) और ऐहिक (=लौकिक) बुद्धि को दिखाने वाली), प्रथमचतुर्थपंचमपुरुषार्थ अर्थात् धर्म और मोक्ष पुरुषार्थ के सामरस्य रूपी अमुष्मिक (अकल्याणकारी) बुद्धि की सांसारिकता को देखने से भावों के विकार = उद्वेग में (द्वितीयतृतीययोरिव) अर्थात् दूसरे और तीसरे – अर्थ और काम रूपी पुरुषार्थ के युगल रूप के अमुष्मिकत्व=अकल्याणत्व को देखने से और इधर उधर मुड़ने वाले अनुपयुक्त जीविका प्रदान करने वाले पूजा क्रम में पुरुषार्थ पंचक में पांच पदों की महिमा के विस्तार से छटी आदि नौ के अन्त तक की संख्या के क्रम में भी छः सात संख्या रूपी अन्र्त और बाह्य सामरस्य की पूजा के भेद से षण्मुख रूपी छटी और सातवें मनु ग्रह द्वीप समुद्र आदि वासना अनुकूल कल्पित भ्रमिक आदि शाक्त, शक्ति के आनन्द रूपी तथा त्रिवर्ग, चर्तुवर्ग, पंचवर्ग की अवयव अवयवी (अर्थात् एकाकी रूप वाली, एक अंश वाली और सभी अंशों के समूह वाली) भेद से पूजित अन्धकार से पार ले जाने वाली, सप्त मातृका, अष्ट मातृका अथवा सात मातृका या आठ मातृका, नवधा रूप वाले नवयोनि कालशैव चक्र आदि रूप वाले और नाद संज्ञा वाले और शिव और शक्ति भाग अर्थात् ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति के समागम या समरसीभाव में भासित पराशक्ति और पाँच रूपी अंश –

जाग्रद, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय और तुरीयातीत में अन्त होने वाली मानव अवस्था जो पर रूपी है और ब्रह्म के पंचकृत्यों (सृष्टि, स्थिति संहार, अनाख्या और भासा) नाम वाले काली के पाँच भेदों के समन्वय को जो सब ओर प्रवृत्त हो, फैला हुआ हो उसके जानने को पहले कथित पृथ्वी आदि परोरजा पर्यन्त गायत्री पाद में यथाक्रम (1) अहङ्कार (2) प्राण (3) मन (4) बुद्धि (5) इन्द्रिय पश्चिम दिशा में जाने पर उनका नियमन करने हेतु सर्वदा श्रुति में सुने हुए आत्म सम्पद अर्थात् आत्म आनन्द की अभिवृद्धि (केलिए) से "बृहि बृंहि वृद्धौ" अर्थात् बृहि एवं बृंहि धातुओं का अर्थ है वृद्धि–बढ़ना, उगना इसी प्रकार शब्द की निरुक्ति के अनुसार आत्म आनन्द की वृद्धि से ब्रह्म की ही वृद्धि का अन्वय अर्थ है। जो नाश से रक्षा (करने वाला है) करता है वह क्षत्रिय। या वह क्षत्री; जिसमें क्षत्रत्व है। या जो नाश से रक्षा करता है / करने वाला है, उस क्षत्रिय या क्षत्री का। यही क्षत्रत्व है।

धर्म धर्मि रूपी विशेष स्थिति वाले आत्म सम्पद की विशेष स्थिति (चेत्येवं) 'पर' के पर्याय में वैदिक सच्चिदानन्दरूपी ज्ञान क्रियामय तीन मुख्य शब्द शरीर वाले "रोग देह का क्षय करता है। इस प्रकार से कल्प का ही ध्यान किया जाता है। उसकी सूचना के द्वारा उसका भी (कल्पसूत्रत्व में) कल्पसूत्र से सम्बन्धित में अवलोकन होता है" इत्यादि भविष्योत्तरपुराण में भौतिका (=उपासक) और भौतिक (=महादेव) के शब्दार्थ के सामरस्य के द्वारा तीन मुख्य ऋक, यजु, साम वेद शरीर वाले काली और परशिव काल के मिथुन (=सायुज्य) रूपी कल्प से सम्बन्धी वैदिक षडध्वा (=छह अध्वा, छह मार्ग) पर के पर्याय रूपी षडङ्ग (=छह अंगों वाले) शब्द शरीर रूप वाले–शिक्षा, व्याकरण, छन्द, कल्प, निरूक्त और ज्योतिष, षडङ्ग– छह अंगों वाले शब्द रूपी शरीर वाले (ये छः वेदांग हैं– शिक्षा, छंदस्, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और कल्प (=कर्मकाण्ड) या अनुष्ठानपद्धति।

छह अंगों रूप वाले शाब्द अध्व जो त्रिक प्रधान हैं, वेदांग शब्द ज्ञान शरीर वाले हैं, काल और काली के मिथुन (=सामरस्य) रूपी ज्ञान त्रिपुटी रूप हैं अर्थात् इच्छा,

ज्ञान और क्रिया रूपी हैं, और ज्योति कल्पात्मक के अर्थ रूपी अध्व (=मार्ग) का निरुक्त (=अर्थ विवेचन) (निर्वचनपरक व्याख्या) अर्थ अध्व त्रिक प्रधान है, कला, तत्त्व और भुवन रूप है, महार्थमञ्जरीकार ने कहा है कि अर्थस्वरूप तीन अध्वा प्रकाशमय शिव का अर्ध भाग हैं और शब्दस्वरूप तीन अध्वा विमर्शमय शक्ति का अर्ध भाग हैं। इस तरह से शब्द और अर्थमय यह सारा जगत् शिव शक्ति के यामल स्वरूप से अर्धनारीश्वर स्वरूप से उल्लसित होता है। प्रकाशमय शिव से कला, तत्त्व और भुवन की तथा विमर्शमय शक्ति से वर्ण, पद, और मन्त्र की सृष्टि होती है। ये ही तन्त्रशास्त्र में षडध्व के नाम से परिभाषित हैं। भास्करराय ने वरिवस्यारहस्य में इनको शब्दमयी और अर्थमयी सृष्टि का नाम दिया है। यह विभाग काश्मीर शैव दर्शन और शाक्त दर्शन को भी समान रूप से मान्य है। शैव और शाक्त तन्त्रों में षडध्वप्रक्रिया के आधार पर भी सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। (''षडध्वा'', पृ. 282–283 तन्त्रागमीय ज्ञानकोष,, पण्डित व्रजवल्लभ द्विवेदी)।

क्रिया त्रिपुटीमय है अर्थात् ज्ञान, क्रिया, इच्छा की त्रिपुटीमय रूप है, मुख्य वेदाङ्ग रूपी शरीर इस प्रकार ही मुख्य है, त्रिविध (तीन प्रकार का), वेद वेदाङ्ग तीन रूप वर्णिक की लेखनी नवचक्रात्मक है (=श्रीचक्र नव चक्रात्मक है) अर्थात् जो नवचक्रात्मक अर्थात् नवचक्र रूपी श्रीचक्र है, (तीन वेद और छः वेदाङ्ग मिलकर नव=नौ की संख्या होती है) वेद के मुख्य अधिकारीयों द्वारा सिद्ध चक्र है। जो अनधिकारक हैं वे उल्टे क्रम से पूर्वोक्त पाँच संख्या वाले विराड् (=विराट) गायत्री पाद अहङ्कार आदि इन्द्रिय पर्यन्त आत्मा के अवयवों में विमुख जाकर, होकर नियम्यत्वे?, विराड् (=विराट) रूप, कार्य ब्रह्म रूप से स्थित, सत्य ही। (... इत्यादि श्रुति) उक्त वैदिक क्रियामात्र अधिकार में वेद के तात्पर्य विषय सम्बन्धी अविद्यक वैखरी का क्रियामात्र रूप से ''स्त्री शूद्र और द्विज बन्धुओं तीनों को श्रुति गोचर नहीं है, सुलभ नहीं है। ऐसा भारत (=महाभारत) आख्यान में कृप मुनि ने कहा है ''इस प्रकार कहा गया तीन नाममात्रधारि लेखनी रूपी साधक चक्र है। त्रिकोण और वसुकोण तीन के विस्तार से ही नवात्मक या नवचक्रात्मक (श्रीचक्र बनता है)

(योगिनीहृदयम्, पृ. 17, 23, चक्रसंकेतः प्रथमः, पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी, – दीपिकाभाषानुवादसहितम्)।

उसकी मर्यादा के सम्पन्न के अप्यभाव से तत्तत उन उन सङ्कीर्ण वृत्ति से उपलक्षित पंचजन आदि रूप आगे कहे जाने वाले शिष्य औध लक्षण को पाकर साध्य रूपी श्रीचक्र को जगत को बृन्दचक्रपीठ यह तीन वृत्ति रूप महाविराट् सम्पद को पूर्वोक्त, पहले कहे हुए विराड् (=विराट्) गायत्री स्वर की पूर्णता रूपी सामरस्य के द्वारा ''दश हस्त्या ....'' इस प्रकार श्रुति में कहे गये कालपुरुष की पूर्णता की सामरस्यता के भेद के द्वारा भारत पंचम वेद के समन्वय के मार्ग के द्वारा और (मंत्र से) इत्यादि कालीप्रासाद पराप्रासाद आदि, पाँच, सात और नौ आदि संख्या के बीजपिण्ड मन्त्र आदि पञ्च आम्नाय के सार रूपी महाकाली काल के मिथुन रूपी (चिद्) जडमय चिद् में नवनाद अर्थात् नौ नादों की महिमा के सामरस्य ही सकल आगम, तन्त्रशास्त्र में जानने योग्य है चिद्गगनचन्द्रिका स्तुति में व्याख्यात पीठ उत्पत्ति आदि काल उपासना, क्रम रहस्य को वैदिका वैदिक साधक के हृदय के उद्योग रूप नेत्र (=ज्ञान) के उन्मेष को ग्रहण करने की (इच्छा), मानव=मनु, की इच्छा निज नेत्र दिक् क्रियामय शरीर से सम्बन्धी, महाकाली काल मिथुन (सामरस्य) रूप वाली अर्धनारीशरीर के तदतीतपदत्वं पद का भी दर्शन होता है, ''द्वा सुर्पणा...'', ''इस प्रकार मन्त्र में कहे गये विरोधी समान भाव से हानिफल और लाभ केलिए महानादमय रूपी पूर्ण अहम् भाव केलिए हृदय रूपी गुहा (=गुफ़ा) में इच्छा का वर्णन पूर्व (पहिले) में, निज और उसके प्रवेश के द्वारा प्रमाता का पूर्ण भाव का दर्शन ''स्त्री, शूद्र और द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के बन्धुओं, तीनों को श्रुति गोचर नहीं है अर्थात् प्राप्य नहीं है'' इस प्रकार कहा गया है कि स्त्री, शूद्र आदि, तीनों पर अनुग्रह (=कृपा) से सकल तन्त्र, आगम, पुराण, इतिहास आदि, जानने योग्य महाकुल धर्म रूपी भारत के स्व (=निज) कुलधर्म में महाविराट गायत्री के अर्थ में ही इस प्रकार अभिनीय (=अभिनीत= निकट लाया गया) यह दिखाया गया है, महाकौलिक अर्थ रूपी नारी, ईश्वर का शब्द अर्थमय शरीर के द्वारा स्वयं अप्य, अनुगमन होता है।।4।।